सीखने वाला अध्यापक

'टीचर्स जर्नी' के कथानक की समीक्षा

एलेक्स एम. जॉर्ज

यह लेख एक अकादमिक फिल्म की समीक्षा है जो मुकेश मालवीय नाम के एक अध्यापक के पढ़ाने के तरीकों पर बनाया गया वृत्तचित्र है। यह लेख फिल्म के कथानक को व्यापक सन्दर्भ में रखकर, कक्षा में इस्तेमाल होने वाले तरीकों की सामान्य बदहाली की ओर इशारा करता है और उच्च शिक्षा, विशेषकर, शिक्षकों की शिक्षा में ऐसे वृत्तचित्रों के उपयोग की सम्भावना दर्शाता है।

अकादमिक चर्चाएँ और वादविवाद प्रमुख रूप से पढ़े जाने वाले वृत्तान्तों या विवरणों पर आधारित होते हैं। गतिविधियों, प्रयोगों, फिल्मों, सुनने वाली सामग्री या डिजिटल सामग्री को शायद ही कभी हमारी कक्षाओं में प्रवेश मिलता हो। स्कूली कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों का वर्चस्व रहता है और उनमें भी चित्रों, छवियों और कार्टूनों का कल्पनाशील उपयोग मुश्किल से ही देखने में आता है।[1] उच्च शिक्षा में भी, हर शैक्षणिक पत्रिका में प्रकाशित होने वाली अकादमिक चर्चाओं की ही तरह, हम लिखे हुए शब्द पर ही आश्रित रहते हैं। शायद यह माना जाता है कि लिखित शब्द ही बौद्धिक विमर्शों की लहरें पैदा कर सकता है। फिर

1 यहाँ शायद मुझे यह जोड़ देना चाहिए कि यह स्थिति 'हाल तक' थी, क्योंकि एनसीएफ 2005 के बाद एनसीईआरटी द्वारा विकसित सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकों से मैं भी जुड़ा था। लेकिन वे पुस्तकें विभिन्न विषयों और कक्षाओं की सामान्य पाठ्यपुस्तकों की प्रतिनिधि न होकर अपवाद स्वरूप हैं। अतः मैं मानता रहूँगा कि पाठ्यपुस्तकों ने आमतौर पर दृश्य सामग्री के उपयोग की सम्भावनाओं को नहीं पहचाना है।

शिक्षकों को ध्यान में रखकर किसी फिल्म का बनाया जाना तो इससे भी ज़्यादा दुर्लभ है। यह हमारे अकादमिक विमर्श और कक्षाओं की शिक्षण पद्धति की दरिद्रता है। समीक्षित फिल्म (विडम्बना देखिए कि यह समीक्षा भी शब्दाश्रित ही है!) 'टीचर्स जर्नी' हमें इस जकड़न से मुक्त करती है और हमसे अकादमिक विमर्श के एक सर्वथा भिन्न प्रयोग की सम्भावना पर विचार करने की माँग करती है। यह एक अध्यापक की शिक्षण पद्धति का सचित्र दस्तावेज़ तो है ही, साथ ही यह शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए एक उपयोगी औज़ार की तरह दिखाती है कि वे अपने छात्रों के साथ बेहतर ढंग से कैसे बर्ताव कर सकते हैं। अक्सर, शिक्षाशास्त्री जिन विषयों की खोजबीन करते हैं - कक्षा में शिक्षण के तरीके और शिक्षक का सामाजिक संसार - यह फिल्म उन्हीं का चित्रण करती है।

दीपक वर्मा की फिल्म 'टीचर्स जर्नी' दो चुनौतीपूर्ण प्रश्न हमारे सामने रखती है। स्पष्ट है कि यह फिल्म दर्शकों के रूप में अकादमिक संस्थाओं और शिक्षाकर्मियों को ध्यान में रखकर ही बनाई गई है। जबकि आमतौर पर हमारे देश में ऐसा होता नहीं है, और फिल्में 'आम जनता' के लिए बनाई जाती हैं। इस फिल्म का कथानक टेलीविज़न के 'शैक्षणिक' चैनलों पर दिखाई जानेवाली सामग्री से काफी अलग है, जहाँ कक्षाओं की मौजूदा शिक्षण पद्धति 'चॉक एण्ड टॉक' (बोर्ड पर लिखना और भाषण देना) को गौरवान्वित किया जाता है। इस सन्दर्भ में निर्देशक शिक्षण व्यवसाय से जुड़े लोगों से इसके बारे में पुनर्विचार करने के लिए इस ओर इशारा करता है कि कैसे एक अध्यापक कक्षाओं की दरिद्रता, और पाठ्यपुस्तकों के शिकंजे के पार जाकर अपना काम कर सकता है। निर्देशक इस फिल्म के द्वारा यह उम्मीद करता है कि उच्च शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण में यथासम्भव फिल्मों का उपयोग किया जाएगा, और फिल्में प्रशिक्षु अध्यापकों को उनकी भावी व्यावसायिक यात्रा हेतु प्रेरित कर सकेंगी।

फिल्म बताती है कि एक आदर्श चिन्तनशील अध्यापक, मुकेश मालवीय, कैसे अपने अनुभवों से सीखता है। एक तरह से यह फिल्म मुकेश मालवीय के अनुभवों का ही दस्तावेज़ और रिपोर्ताज है। यह अध्यापक एक साथ अनेक भूमिकाओं में जीता है, प्रयोग करता है, और उनके बारे में हमें बताता है। कक्षा में उसकी भूमिका बच्चों के मार्गदर्शक और निर्णायक की है। मध्यभारत की जिस आदिवासी बस्ती में वह रहता है उसमें उसकी भूमिका एक सामाजिक व्यक्ति की है, और शायद राज्य के लिए वह सिर्फ शैक्षणिक नौकरशाही की सबसे निचली कड़ी भर है। शैक्षणिक नौकरशाही उसे बच्चों या उसके समुदाय के प्रति नहीं, बल्कि अपनी व्यवस्था के प्रति ही उत्तरदाई बनाए रखती है, जिसके अन्तर्गत

उसका काम हर सर्वेक्षण, हर जनगणना और हर अभियान में सेवा करना है।

विद्यालय में पहली से पाँचवीं तक इकट्ठी कक्षाएँ हैं, जिनके बीच वह अकेला अध्यापक है। वहाँ अराजकता का माहौल है। अध्यापक इसमें भी काम चलाने के लिए एक रास्ता निकाल लेता है। वह देखता है कि चूँकि सभी कक्षाओं के बच्चों को अलग-अलग बैठाने के लिए पर्याप्त कमरे नहीं हैं, इसलिए साथ बैठे बच्चे, बच्चों से ही सीख रहे हैं। वे एक-दूसरे को वही थोड़ा बहुत सिखाने की कोशिश कर रहे हैं जो इस अराजकता में अध्यापक उन्हें सिखा पाया है। अध्यापक बच्चों के समूह बनाकर इस स्थिति का सार्थक उपयोग करने की कोशिश करता है ताकि परस्पर सीखने का काम बेहतर ढंग से हो। यह ऐसी स्थिति में एक सटीक पहल है जिसमें कहा जाता है कि अध्यापक व्यवस्था की सख्ती तले दबे हुए रहते हैं और स्वायत्तता न होने के कारण कुछ नया नहीं कर पाते।[2] मुकेश को विद्यालय की जिस अराजकता में डाल दिया गया था उसी ने उसे नया रास्ता निकालने के लिए प्रेरित किया। कक्षा

2 उदाहरण के लिए देखें, पीटर एम सेंगे, नेल्डा एच. कैम्ब्रॉन मैकाबे, टिमोथी लुकास, आर्ट क्लीनर, जेनिस डटन, ब्रायन स्मिथ- 2000 की पुस्तक 'स्कूल्स दैट लर्नः ए फिफ्थ डिसिप्लिन फील्डबुक फॉर ऐजुकेटर्स, पेरैन्ट्स एण्ड एवरीवन हू केयर्स अबाउट ऐजुकेशन', निकोलस ब्रीले पब्लिशिंग, लन्दन, जिसमें पृष्ठ 32-33 पर स्कूल के तरीकों में आए नए परिवर्तनों की समानताएँ और अन्तर बताए गए हैं। वे कहते हैं कि उद्योगों से स्कूल इस मायने में भिन्न हैं कि वे कहीं अधिक नियंत्रित परिस्थिति में काम करते हैं, इसलिए शिक्षक कुछ नया करने से इन्कार करते हैं।

में हो रहे शोर को उपयोगी बनाया गया और सीखने का काम पाठ्यपुस्तकों से बाहर निकलकर हुआ। फिल्म की शुरुआत में पर्दे पर लिखा हुआ आता है - "एक दशक तक मेरे स्कूल में मैं अकेला अध्यापक था। मैं शिक्षा से असम्बद्ध अनेक सरकारी काम करने में व्यस्त रहता था और स्कूल में कुछ ही समय रह पाता था। वहाँ मैं बच्चों से सीखता था और परस्पर सीखने तथा मिलकर ज़िम्मेदारी उठाने का वातावरण पैदा करने की कोशिश करता था।"

जैसे-जैसे फिल्म आगे बढ़ती है, पाठ्यपुस्तकें पूरी तरह गायब हो जाती हैं। देखा जाए तो कोई गतिविधि पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं होती - लेकिन विभिन्न तरह के कौशल सिखाने के लिए जो गतिविधियाँ होती हैं वे इस प्रकार हैं - गिनती करना, ग्राफ बनाना, परिवार के सदस्यों को पहचानना, पर्यावरण के पहलुओं की पहचान करना, वर्गीकरण, जानकारियों का संग्रह और सर्वेक्षण करना, लिखने का कौशल, चीज़ों को क्रमबद्ध करना और तार्किक ढंग से सोचना। मुकेश कहते हैं कि यदि पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाने का बोझ हट जाए तो मैं और मेरा स्कूल ज़्यादा अच्छी तरह चल सकते हैं। ऊपर बताई गई हर गतिविधि और एकत्रित की गई हर सूचना उनके समुदाय से ही सम्बन्धित थी, लेकिन मुकेश का कहना है कि यह सीखने की प्रक्रिया में सहायक होने वाला एक

महत्वपूर्ण पहलू है। ये गतिविधियाँ उन तरीकों की ओर इशारा करती हैं जिनसे एक अध्यापक कक्षा में सीमित शिक्षण-पद्धति की दरिद्रता को दूर कर सकता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा में पाठ्यक्रम की केन्द्रीय भूमिका होने की धारणा को चुनौती देता है, और उसकी बजाय शिक्षक की दक्षता और स्वायत्तता को प्रमुखता देता है।

यहाँ दो प्रश्न उठाए जा सकते हैं। पहला यह कि यह अतिरिक्त सामग्री कैसे घर और विद्यालय की वर्तमान संस्कृति में सेंध लगाती है? और दूसरा यह कि यह सामग्री किस तरह छात्र-अध्यापक अन्तर्सम्बन्धों में दोनों की भूमिकाओं को, तथा उनके परस्पर व्यवहार को निर्धारित करने वाले तरीकों को फिर से परिभाषित करती है? फिल्म में दिखाए गए शिक्षण कार्य में, यह देखकर हौसला बढ़ता है कि अध्यापक छात्रों का ज्ञानवर्धन करने के लिए बाहर से कोई अनजानी चीज़ नहीं लाया है, बल्कि उसने बच्चों को नई बातें सिखाने के लिए उसी परिवेश की चीज़ों का इस्तेमाल किया है, मसलन, ग्राफ बनाना सिखाने के लिए परिवार के सदस्यों की संख्या का उपयोग। फिल्म दिखाती है कि कैसे केवल पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर रहने की बजाय विभिन्न गतिविधियों और शिक्षण पद्धतियों के उपयोग द्वारा बच्चे और अध्यापक के बीच के रिश्तों को पुनर्परिभाषित किया जा सकता है।[3] इस प्रकार की सामग्री या शिक्षण की ऐसी रणनीतियों के इस्तेमाल से रूढ़िबद्ध शिक्षण की परिपाटी को समाप्त किया जा सकता है। लेकिन इसमें भी केन्द्रीय महत्व की बात अध्यापक का ऐसे उपाय अपनाने के लिए तैयार और इच्छुक होना है।

नीचे दिए गए कुछ उदाहरण इस बात के सूचक हैं कि जहाँ अध्यापक केन्द्र में हो वहाँ वह किस तरह नियमित शिक्षण-पद्धति से जुड़ी हर चीज़ को छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाता है। इस पारस्परिक क्रिया में अध्यापक कक्षा की तरफ मुँह करके खड़ा नहीं रहता, बल्कि बच्चों के साथ फर्श पर बैठकर उनकी स्लेट पर लिखकर दिखाने को तैयार रहता है। इस तरह, करके दिखाने की बात सिर्फ ब्लैकबोर्ड तक सीमित नहीं रहती, वह बच्चों के इर्द-गिर्द उनकी जगह पर ही घटित होती है। जब अध्यापक को लगता है कि शायद बच्चे के पास लिखने के लिए स्लेट-पेन्सिल नहीं है तो वह उसे अपनी ब्लैकबोर्ड पर लिखने की चॉक दे देता है। इसी प्रकार बच्चे बोर्ड पर (जो ज़रूरी नहीं कि विद्यार्थियों की ऊँचाई पर हो) सारी कक्षा के लिए ग्राफ बनाते हैं। बच्चे बेझिझक एक-दूसरे की स्लेट में झाँककर देखते, और एक-दूसरे से सीखते हुए देखे जा सकते हैं। स्कूल और कक्षा बच्चों की सक्रिय भागीदारी

3 यहाँ प्रसंगवश बता दूँ कि शिक्षक अपनी गतिविधियों में पाठ्यपुस्तकों का भी उपयोग करता है, पर फिल्म की तरह यहाँ भी हम दूसरी चीज़ों के वर्णन पर ध्यान देंगे।

से चलते हैं। बच्चे कक्षा का कमरा खोलते हैं, वहाँ सफाई करते हैं और ज़रूरत पड़ने पर कक्षा में अनुशासन बनाए रखने का काम भी करते हैं। इसलिए मुकेश की यह बात एकदम ठीक लगती है, 'मेरी कक्षा में सब अध्यापक हैं।'

एक दृश्य में एक बच्ची फर्श पर बैठने से इन्कार कर देती है। उसे लगता है फर्श पर बैठना उसकी गरिमा के अनुकूल नहीं होगा। स्कूल में बुनियादी सुविधाओं का अभाव अक्सर हमें खटकता है। यह कमी, और इसके साथ-साथ अध्यापकों के रिक्त पड़े पद शिक्षा व्यवस्था से जुड़े लोगों के लिए ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनसे वे मुँह नहीं चुरा सकते। इस बात को नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि शिक्षा को बुनियादी अधिकार बनाने के वादों के बावजूद और एसएसए, डीपीईपी आदि अभियानों के ज़रिए सभी बच्चों को स्कूल तक 'लाने' के प्रयासों के बावजूद, स्कूलों में पर्याप्त अध्यापकों की व्यवस्था करने या शिक्षकों को कार्यकारी स्वायत्तता देने के मामले में कुछ खास नहीं किया गया है।

मुझे निजी तौर पर, कक्षा में अनुशासन बनाए रखने और छात्रों को शारीरिक दण्ड देने, या न देने पर हुई बहस फिल्म का सबसे ज़्यादा दुविधाग्रस्त हिस्सा लगा। एक तरफ तो यह 'शारीरिक दण्ड' न देने के अध्यापक के संकल्प को दर्शाता है, दूसरी तरफ दोषी पाए गए छात्र के शर्मिन्दा किए जाने की प्रक्रिया को भी दिखाता है। अध्यापक कक्षा के

सहभागियों को समझाता है कि 'मुर्गा बनाने से सीखते नहीं हैं', और फिर बड़े लोकतांत्रिक तरीके से उन्हें इस बात के लिए राज़ी कर लेता है कि जिन छात्रों का मामला है, उनकी राय पर भी गौर किया जाए। वह दोषी छात्र, उत्पीड़ित छात्र और पिटाई देखने वाले कक्षा के सभी छात्रों की राय लेता है कि क्या दोषी छात्र को सज़ा दिए जाने की ज़रूरत है? यदि हाँ, तो कैसे? लेकिन इस प्रक्रिया में जो लगभग पाँच या दस मिनिट चलती है, दोषी छात्र निश्चित रूप से शर्मिन्दगी से गुज़रता है।

मुकेश बच्चों के हुनर का सम्मान करते हैं और उसका मूल्य समझते हैं। उनका कहना है कि जो बच्चे बैलगाड़ी चला सकते हैं और तेन्दू पत्ता जमा कर सकते हैं, उन्हें 'बच्चा' समझना ठीक नहीं है। इसलिए जब उनकी स्कूली पढ़ाई शुरू होती है तो उनके ज्ञान और अनुभव को मूल्यवान समझना, और स्कूली शिक्षा से उसे जोड़ना ज़रूरी हो जाता है। राज्य, शिक्षा व्यवस्था और पाठ्यपुस्तकें उन्हें बच्चा समझकर अक्सर शिक्षा का अति सरलीकरण कर देती हैं। अध्यापक इस रवैए में आमूल परिवर्तन चाहता है। उसका कहना है कि बच्चों के भविष्य के बारे में तो कुछ भी कह पाना मेरे लिए मुश्किल है, लेकिन मैं इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि इनमें इतना आत्मविश्वास ज़रूर होगा कि वे जिस चीज़ पर भरोसा करते हैं उसके लिए डटकर खड़े हो सकें।

इसके बावजूद कि दृश्य माध्यम और उसकी तकनीक हमें अनेक दशकों से उपलब्ध है, अकादमिक उद्देश्यों के लिए इसका समुचित उपयोग कभी नहीं किया गया। दीपक कहते हैं कि राज्य द्वारा संचालित टेलीविज़न के लिए वैज्ञानिक विषयों पर फिल्म बनाते समय, कथानक के ढाँचे में मूलभूत परिवर्तनों को लेकर अक्सर उन्हें काफी प्रतिरोध झेलना पड़ा। इस माध्यम पर हमारे देश में उपलब्ध शैक्षणिक सामग्री में भी अकादमिक ज्ञान और उसके प्रस्तुतीकरण की गुणवत्ता में ठीक तालमेल नहीं दिखाई देता। शैक्षणिक सी.डी. जारी करने के ताज़ा शिगूफे के सन्दर्भ में यह बात और भी ज़्यादा लागू होती है कि विषय के प्रस्तुतीकरण के लिए दृश्य माध्यम की सम्भावनाओं का ठीक इस्तेमाल करने की बजाय सारे कार्यक्रम को पाठ्यपुस्तकीय विवरण पर ही केन्द्रित रखा जाता है।

यह इस फिल्म के निर्माणदल की एक उपलब्धि है कि कक्षा में अध्यापक या बच्चों के आस-पास कहीं कैमरे की उपस्थिति का आभास नहीं होता। दृश्य आख्यान का उपयोग करने की इस कुशलता की वजह से कक्षा का वातावरण, शैक्षणिक पद्धति के लिखित शास्त्रों की तुलना में, अधिक जीवन्त और प्रामाणिक लगता है। ऐसी फिल्मों से अध्यापक को भी पता चलता है कि उसके तरीके और तरकीबों का कक्षा पर वास्तव में क्या असर पड़ा! ऐसे

सारे मुद्दे उच्च शिक्षा के लिए, और उन शिक्षाविदों के लिए केन्द्रीय महत्व के हैं जो ऐसी शिक्षण पद्धतियों के विकास में रुचि रखते हैं जिन्हें अब तक पूरी तरह परखा नहीं गया है।

इस फिल्म से उम्मीद बँधती है कि यह एक ृंखला की पहली कड़ी होगी। आगे हम कक्षा की प्रक्रिया एवं अध्यापक के जीवन के बारे में और भी दिलचस्प वृत्तचित्र देखने की आशा कर सकते हैं। यह फिल्म अब तक पर्याप्त ध्यान आकर्षित कर चुकी है। इसे सन् 2007 का जापान का 'होसो बुंका फाउण्डेशन अवार्ड' भी मिला था। फिल्म का कई शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रदर्शन हो चुका है और इसे काफी सराहना प्राप्त हुई है। अतः इस समृद्ध दृश्य सामग्री के आने से कक्षा की सीमित शिक्षण प्रणाली की कम-से-कम एक दरिद्रता दूर करने की शुरुआत तो हो ही गई।

एलेक्स एम. जॉर्ज - एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े रहे। शिक्षा का समाजशास्त्र और विधि उनके प्रिय विषय हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बैंगलूरु से सम्बद्ध।

अँग्रेज़ी से अनुवाद - स्वयं प्रकाश। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार। कई महत्वपूर्ण किताबों का हिन्दी अनुवाद। वर्तमान में वसुधा पत्रिका के सम्पादक । भोपाल में निवास।

चित्र: फिल्म की शूटिंग के दौरान खींचे गए विविध फोटो।

सम्पादन सहयोग: सत्येन्द्र त्रिपाठी।

यह समीक्षा सर्वप्रथम 'कन्टेम्पररी एज्युकेशन डायलॉग' पत्रिका के खण्ड-5, क्रमांक-2, वसन्त, वर्ष 2008 में अँग्रेज़ी में छपी थी।

इस लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं, उस संगठन/संगठनों के नहीं जिनसे लेखक जुड़ा हुआ है।

फिल्म की प्रति हरकारा मीडिया, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन एवं एकलव्य, पिटारा से प्राप्त की जा सकती है।